हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र पांगी की लोकसंस्कृति, लोकसंस्कार एवं लोकसंगीत का स्वरुप

राजीव[1]

भारतीय संस्कृति विविधता में एकता की परिचायक है। इसी एक विशेष गुण के कारण भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृतियों में से एक है। यह संस्कृति हमें जीवन के विविध पहलुओं से अवगत कराती है। हिमालय की सुरम्य घाटियों और बर्फ से लदे पर्वतों के बीच देश का एक राज्य हिमाचल प्रदेश है, जिसका सौन्दर्य जहां एक और देशवासियों को गौरवान्वित करता है, वहीं विदेशियों को अपनी और आकर्षित करता है। हिमाचल प्रदेश की गोद में अवस्थित इस राज्य की अपनी एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा है। देव भूमि हिमाचल के नाम से विख्यात इस राज्य को जहां प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य प्राप्त है, वहीं पर इसके आंचल में बसे लोगों कों जन जीवन भी किसी रहस्य और रोमांच से कम नहीं। भिन्न–भिन्न संस्कृति एवं संस्कारों से भरे 12 जिलों के संगम से बने हिमाचल के हर जिले की अपनी एक अलग पहचान है। इन्ही जिलों में से हिमाचल के उत्तर–पश्चिम में स्थित जिले का नाम है चम्बा। समुद्र तल से यह 600 मीटर से 6500 मीटर की ऊंचाई तक विस्तृत है। इस जिले का क्षेत्रफल 8,109 वर्ग किलोमीटर है।

चम्बा के उत्तर–पश्चिम में जम्मू और कश्मीर, उत्तर–पूर्व और पूर्व में लददाख क्षेत्र तथा लाहौल दक्षिण पूर्व में कांगड़ा और पंजाब का गुरदासपुर क्षेत्र हो इस क्षेत्र में रावी नदी बहती है। यह नदी चम्बा शहर के बीचों–बीच से गुजरती हुई आगे पाकिस्तान पहुंचती है। यह मन भावन जिला मुख्यतः चम्बा, भरमौर, चुराह, भटियात, पांगी, सलूणी और डलहौजी तहसीलों से मिलकर बना है। इन तहसीलों की वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, अपनी एक अलग विशेषता लिए हुए हैं। प्रत्येक तहसील में विभिन्न लोक गीतों के साथ–साथ कुछ विशेष लोकगाथाओं पर आधारित लोकगीत गाए जाते हैं। इन लोकगीतों को जब लोग सुनते हें और अलग–अलग वेशभूषा एवं आभूषणों को जब लोग देखते हैं तो अनायास ही पहचान जाते हैं कि अमुक गाथा एवं गीत वेशभूषा अथवा आभूषण, बोली किस तहसील की है। इस तरह प्रत्येक तहसील की अपनी–अपनी अलग संस्कृति है।

पांगी चम्बा ज़िला की सात तहसीलों में से एक है। चारों तरफ से पहाड़ों से घिरी इस तहसील का मुख्यालय किलाड़ है। यह समुद्र तल से 8411 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। लगभग 66 गांवों से मिलकर बनी इस तहसील को 16 पंचायतों में बांटा गया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं :– सुराल, धरवास, लुज, कुमार, साच, किरयूणी, किलाड़, करेल, करयास, साहली, सेचू, शूण, मिंधल, रैई, पुर्थी एवं हुंडाण। चन्द्र भागा नदी की कल–कल ध्वनियों से सरावोर इस घाटी में मखमली चरागाहें, हरे–भरे जंगल, कई स्थानीय देवी–देवताओं के मंदिर, बर्फ से ढकी पर्वत श्रृंखलाएं एवं खूबसूरत वादियां हैं।

पांगी क्षेत्र के लोगों (पंगवाल) का रहन–सहन सामान्य है। यहां की जलवायु ठंडी है। परिवार के लोग सभी एक साथ बैठकर खाना खाते है। खाने में आलू गेहूं, चावल, फुल्लन, भरेस (भेस), चणिया, मक्की आदि से बने खाद्य पदार्थों का इस्तेमाल करते है। पांगी में आदर–सत्कार के लिए विशेष प्रकार का खाद्य–पदार्थ 'सत्तू' बनाया जाता है। जिसे भूने हुए गेहूं या जो के आटे में घी एवं शहद मिलाकर बनाया जाता है।

पांगी क्षेत्र में मुख्यतः दो प्रकार की लोक भाषाएं यानी बोलियां बोली जाती है। पहली पंगवाली एवं दूसरी भोटी। पंगवाली बोली क्षेत्र–समुदायनुसार दो प्रकार की प्रचलित है। पांगी के लगभग आधे क्षेत्र में पांगवाली बोली के एक प्रकार का प्रयोग होता है जबकि बाकि बचे क्षेत्र में पांगी बोली के दूसरे प्रकार का। गहराई से विचार करने पर वैसे तो इसमें शाब्दिक भेद ज्यादा नहीं है, परंतु उच्चारण की दृष्टि में भेद है। किलाड़, सुराल, धरवास, तथा लुज आदि पंचायतों में बोली जाने वाली पंगवाली में 'स' शब्द का ज्यादा प्रयोग होता है तो साच, सेचू, पुर्थी, रैई आदि पंचायतों में 'आ' शब्द का प्रयोग अधिक होता है। भोटी मुख्यतः भोट यानी बोद्ध धर्म के अनुयायी लोगों में ही बोली जाती है।

1 संगीत अध्यापक, केन्द्रीय विद्यालय, सराहन, शिमला।

पंगवाली बोली के कुछ सामान्य शब्द

बादल – बदे/बदड़	आग – आग/अग्ग	काला – किठा/टिठा	पिछला कल – ही
आने वाला कल – शू	सिर – कपा /कोपली	बर्फ – डंग	जलना – चड़ा
वर्षा – मेघ	बुझना – हिश/हिशू	खट्टा – अमलु/खट्टु	नदी – गडु
सूखा – शुक्कु	भेड़ – भाडडू/ढाडुड़	गीला – अल्लू	गाय – गौड़ा
वृक्ष – बुट्टा	लड़का – क्वा	सुन्दर – बढ़िया/अब्बल	लड़की –क्वी/कूई
गंदा – कुस्तरा/खराब	आगे – अग्र/अगर	सफेद – हच्छा	पांव –खुर/खूहड़
मां – ई/इजी	पिता – बऊ/बब	बहन – भैइण	दीदी – दैई/देदी
मामा – माम	भैया – भाऊ	भाभी – भाणी	जीजा – मिच

पंगवाली के कुछ वाक्य

पांगी बड़ा सुन्दर क्षेत्र है – पांगेई अब्बल ज़गा अई। पैंगई अब्बल देश असा।

यहां के लोग ईमानदार हैं – इठैणी मांहण ईमानदार अई। इठैहणी महण ईमानदार असे।

पहले यहां सड़कें नहीं थीं – पेल्हे इठि रोड़ें नाऊती। पहल इठि बत नथ।

रास्ते बहुत कठिन थे – बतें सी तान्हीं औखी थीं। बत औखी थी।

भोटी बोली के कुछ शब्द

तुम – रण्ये	तुम दो – रण्ये नी	वे – वह	मैं – ङ या ङरङ
हम दो – ङ नी	हम सब – ङ कुल	बड़ी बहन – रश्ची	भाई – आंच
माता – आमा	पिता – आव	दादा/नाना – आती	लड़का – पुचु/पोचो
दादी/नानी – एबी	छोटा बच्चा – पुढोपु	सास – हयुमु	ससुर – हयुमु (क्योह)
बकरा – राहये	बकरी –रोपु	गाय – पा	याक – याह

भोटी के कुछ वाक्य

तू जाता है – रण्यो छे हाय।

तुम दो जाते हो – रण्यो नी छे हाय।

तुम सब जाते हो – रण्यो कुल छे हाय।

मैं जाता हूं – ङ छे।[1]

पंगवाल जनजाति की अपनी पारंपरिक वेशभूषा है। पुरुष सिर पर सूती कपड़े की श्वेत टोपी पहनते हैं जिसे वह प्रायरू टोप की संज्ञा देते हैं। टोप से कान तथा गर्दन ढकी रहती है, निचले भाग को अंशतः बदलकर सिया होता है। जिस पर लाल या नीचे धागे का बॉर्डर लगाया होता है। यह विशिष्ट प्रकार का वस्त्र अपनी पहचान के लिए पहना जाता है। कमीज़ साधारण कपड़े या ऊनी पट्टी की बनी होती है। इसे कमि कहते हैं। लिक्खड ऊनी पट्टी का बना घुटने तक लम्बा कोट होता है। कमर में ऊनी काला या लाल डोरा पहना जाता है, जिसे 'गाची' के नाम से जाना जाता है। गाची के स्थान पर ऊनी पटका भी पहना जा सकता है। टांगों का वस्त्र किलाड़ में 'चालण' और साच में 'सुत्थन' कहलाता है। यह ऊनी वस्त्र है और रेबदान ढंग से सिला जाता है।

औरतें आकर्षक ढंग से सिर पर जोज़ी पहनती हैं जिस पर कढ़ाई का काम हुआ होता है। इसका ऊपरी भाग सिर को ढांपता है और पिछला भाग सिर की वेणी के साथ–साथ पीठ पर लटका रहता है। शरीर ढांपने के लिए डिज़ाइनदार रंगीन पट्टू (चादर) कलात्मक ढंग से पहना जाता है। जिसे बरास पिन के साथ सुन्दर तरीके से बांधा जाता है उसे 'नलोट' कहते हैं। टांगों में 'चालण' पहना जाता है जिसे 'सुत्थण' भी कहा जाता है। पुरुष और स्त्रियां जौ या गंदम के घास की सुन्दर पूले बनाकर पांव में पहनते हैं

1 छिरिंग दोरजे से साक्षात्कार में प्राप्त शब्द एवं वाक्य

जो कलात्मक ढंग से बनी होती हैं। औरतें अपने बालों को मांग के मध्य से ढालती हैं। दोनों ओर कंघी से समान पट्टियां बनाई जाती हैं। बालों को सुन्दर काले परांदे के साथ पीछे से एक एक लम्बी वेणी में गूंथा जाता है।

मेले

विशेष भौगोलिक परिवेश में रहते पंगवालजनों के अपने मेले और त्यौहार हैं जिन्हें वे अपने विशेष वातावरण और रीति–रिवाज के अनुसार विभिन्न तिथियों को मनाते हैं। उनके मेलों में रंगीलापन होना स्वाभाविक है। नृत्य और गान का होना उनकी मनोरंजक प्रवृत्ति का परिचायक है। सब मेले किसी न किसी रुप में सर्वप्रथम किसी देवता के उपलक्ष्य में मनाए जाते हैं। देवता की विधिवत् पूजा–अर्चना की जाती है तत्पश्चात् मेला आरम्भ होता है। बलि देना प्रायः रिवाज–सा है अतः भेड़–बकरी की बलि दी जाती यहां के हर गांव में अलग–अलग मेले मनाए जाते हैं और उन्हें मनाने की प्रक्रिया या तरीका लगभग एक सा ही होता है। जैसे सुराल गांव में सुराल नघोई का मेला, पुर्थी में पारवाच्च, थांदल में थड़ोट, साच में सच्चे जाच, कुठल में कुठलयाच्च, घिसल में घिसलयाच्च, हिलौर में हिदरवाच्च, चस्क और मौझी में पिनयाच्च, शूण मे शूण्याच्च, मिंधल मे मिनलयाच्च तथा शेरजाच मनाई जाती है। इसके अतितिक्त एक राष्ट्रीय स्तर का फुलयाच्च या फुलयात्रा नाम का मेला मनाया जाता है।

फुलयाच्च– फुलयाच्च या फुलयात्रा पांगी तहसील के मुख्यालय किलाड़ में 29 आश्विन से आरम्भ होकर चार दिन तक धूमधाम से मनाई जाती है। यह मेला पांगी क्षेत्र का सबसे बड़ा मेला है। इसमें धरवास, सुराल, लुज मुख्यतः भाग लेते हैं। यात्रा का आरम्भ कुफा गांव से होता है। चेला कांपता है। कांपते हुए वह छल–कुकड़ी सबको दिखाता है। वादक ढढ–राग आलाप कर मेले का आरम्भ करते हैं। ढढ–राग शोक धुन है। वादक ढढ बजाने और छल–कुकड़ी दिखाने के पीछे एक अनुश्रुति है। कहा जाता है कि पुराने समय में पांगी क्षेत्र में राक्षसों का बोल–बाला था। किलाड़ में एक राणा शासक थे। वह अपने खेतों में काले मटर की खेती लगाते थे। राक्षस आकर उसे उजाड़ जाते। एक दिन राक्षस के छोटे बच्चे मटर खा रहे थे। उनके साथ छल–कुकड़ी (मुर्गी) भी थी। राणा ने उन्हें पकड़ लिया। दूसरे दिन राक्षस बच्चों के माता–पिता आये। राजा ने बच्चों को तो छोड़ 'दिया परन्तु उनको कैद में रखा। साथ ही छल–कुकड़ी को भी काबू में रखा। उस राक्षस युगल ने राणा से रिहायी मांगी। राणा ने आश्वासन दिया कि जब मेरे घर में शुभ अवसर आएगा तो उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। साथ ही छल–कुकड़ी भी दे दी जाएगी।

लोगों को विश्वास है कि वह युगल अब भी बंदी है। यदि शुभ धुन बजाई गई तो उनकी रिहाई का खतरा रहता है। अतः वादक अशुभ–धुन बजाकर उन्हें अभी तक रिहाई न होने की याद दिलाते हैं। छल–कुकड़ी इसलिए दिखाई जाती है कि वे आश्वस्त रहें कि उनकी धरोहर अभी तक सुरक्षित है। मेले में पंगवाल नृत्य और अन्य रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन होता है। चौथे दिन यात्रा दैंत–नाग के मन्दिर में होती है। नाग को बलि चढ़ाई जाती है। मेले के अन्त में मुखौटे पहनकर स्वांग नृत्य भी किया जाता है। इस प्रकार गर्मी का यह मेला सम्पन्न होता है।

त्यौहार

पंगवाल जनजाति के लोग धार्मिक उत्सव में अटूट विश्वास रखते हैं। वे समय–समय पर अपने धार्मिक तीज–त्यौहार मनाने में व्यस्त रहते हैं। उनके लिए प्रकृति भगवान् का संदेश लेकर आती है। बदलता प्राकृतिक–परिवेश उनके लिए एक नया संदेश लेकर आता है। वे ऐसे समय हर्ष और उल्लास मनाते हैं और विधिवत् पूजा–अनुष्ठान करने के बाद जीवन को सार्थक समझकर आनन्द मनाते हैं। इन त्यौहारों में कतिपय निम्नलिखित त्यौहार हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है:–

उत्तरायण (उटैण):– जब सर्दी का मौसम अपना विकराल रुप धारण कर लेता है, बाहर बर्फ के अम्बार लगे होते हैं, बर्फानी हवा जिस्म को चीरती हुई निकल जाती है, उस समय पंगवाल उत्तरायण का त्यौहार मनाना नहीं भूलते। इस त्यौहार को वे उटैण से उच्चारित करते हैं। उटैण वास्तव में पितृपूजन का त्यौहार है। इस दिन वे तरह–तरह के पकवान बनाते हैं। परिवार का मुखिया मन्दिर में जाकर पितृपूजन करता है। यह पौष या माघ में मनाया जाता है और सर्दियों का पहला त्यौहार होता है।

बार :– पौष के अंतिम शुक्रवार को बार का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन हवन किया जाता है। यह त्यौहार हर तीसरे वर्ष मनाया जाता है। घरों में तरह–तरह के पकवान बनाये जाते हैं। औंस (एक विशेष प्रकार का पकवान) और हलवा सगे–सम्बन्धियों में बांट कर खाया जाता है।

दखैण :– यह लड़कियों का त्यौहार है। इस दिन विवाहित लड़कियां फिर मायके आ जाती हैं। यह त्यौहार थाणैई के तेरह दिन बाद आता है। इस दिन लड़कियों का पूजन किया जाता है। इस त्यौहार के लिए सोपरी के शब्द यूं हैं :–

थाणैई ता दखरैण दो कुई त्योहार
थाणैई खा भाइया अप्पू वे पर दखरैण धामे।'

उजौणी :– यह त्यौहार पांगी में हर जगह मनाया जाता है, परन्तु किलाड़ में इसे मनाने की प्रथा नहीं है। मन्दिर में पूजा–अर्चना की जाती है। तत्पश्चात् लोग नागनी के पानी के स्त्रोत पर सत्तू और मक्खन ले जाते हैं। सत्तू और घी के गोले बनाकर प्रसाद रुप में बांटते हैं। गोलों के साथ सौ–सौ ग्राम घी भी दिया जाता है। लोग इस प्रसाद को श्रद्धा और सम्मान के साथ स्वीकार करते हैं।

चजगी और खौल या लौहणी :– पांगी में चजगी का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार उत्तरायण के एक मास बाद माघ मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। शाम को छः बजे के करीब लोग मशालें लेकर देवी और शिव के मन्दिर में जाते हैं। किलाड़ में पहले बड़ा मशायरा देवी के मन्दिर में रखा जाता है। जब यह बुझ जाता है तो अन्य मशायरा शिव मन्दिर में चढ़ाया जाता है। तत्पश्चात् लोग हर्ष व उल्लास के साथ चौकी आ जाते हैं फिर अखरोट के वृक्ष पर जलते मशायरे फेंकते हैं। उनका विश्वास है कि जिसका मशायरा पेड़ को छू कर वहीं ऊपर रुक जाये तो उसके घर पुत्र पैदा होता है। इस के बाद लोग अपने–अपने घर वापस आ जाते हैं।

साच परगना में इस त्यौहार को 'खौल' या 'लोहणी' के नाम से जानते हैं। वे इस दिन प्रातः नाग के मन्दिर में भंगड़ी के बकरे चढ़ाते हैं और आपस में बांट कर खाते हैं। पांगी में क्षेत्र भिन्नता के आधार पर इसके मनाने में भी भिन्नता पाई जाती है। यह त्यौहार फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है, यह लौहणी के नाम से भी जाना जाता है।

सामल :– यह त्यौहार खौल (लौहणी) के ठीक सात दिन बाद साच परगना में मनाया जाता है। किलाड़ में इस त्यौहार को मनाने का प्रचलन नहीं है। साच में इसे मनाने की जो प्रक्रिया है वह किलाड़ में शिवरात्री को अपनाई जाती है। साच के लोग सामल के दो दिन पहले अपने घरों को खूब कलात्मक ढंग से सजाते हैं। वे लाल और काली मिट्टी से घर की लिपाई–पोताई करते हैं। घर के बड़े कमरे को खूब लिखा जाता है। कमरे के चारों कोनों पर त्रिशूल चित्रित किये जाते हैं। फिर कमरे की चौरस रुप से चित्रकारी की जाती है। घर की अंदरुनी छत को भी सफेद मिट्टी से चित्रित किया जाता है।

शिवरात्रि :– यह त्यौहार पांगी में हर जगह मनाया जाता है। इस दिन लोग व्रत रखते हैं। यहां के लोग इस दिन अपने घरों की छत पर एक लिखावट करते हैं। वे एक ओर टुंडा राक्षस का चित्र बनाते हैं और दूसरी ओर राम का चित्र तीर–कमान लिए बनाते हैं। तीर–कमान टुंडा राक्षस की ओर साधे होना चाहिए। उस चित्रकारी के नीचे एक छोटा–सा दयार का वृक्ष चित्रित किया जाता है। जिस पर श्वेत चमकर के पत्थर रखे जाते हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से राक्षस अन्दर नहीं घुस पाता। दरवाज़े और खिड़कियों पर कांटे लगा दिये जाते हैं। रात को कोई भी व्यक्ति बाहर नहीं निकलता। सारा दिन व्रत रखा जाता है। रात को फलाहार–आलू, दूध, फुल्लन और सियूल के पकवान खाये जाते हैं।

सिलह :– सम्पूर्ण पांगी में यह त्यौहार खूब धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार फाल्गुन और चैत्र मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इस त्यौहार से दो–तीन दिन पूर्व घर की लिपाई की जाती है। घर में लिखावट की जाती है। बलिराज के चित्र बनाये जाते हैं। उस दिन शाम को भंगड़ी के बकरे बनाकर पूजे जाते हैं। घर में घी के दीपक से रोशनी की जाती है। बलिराज का चित्र बनाकर पूजन किया जाता है। रात को जल्दी ही लोग सो जाते हैं। लोक विश्वास है कि उस रात को किसी प्रकार का शोर नहीं करना चाहिए। टक–टक, ठक–ठक की ध्वनि नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से महाराज बलि का सिर फट जाता है।

इस दिन लोग प्रातः ही उठकर अपनी भेड़–बकरियों पर पानी का छिड़साव भी करते हैं। मन्दिर जाते हैं। रात को बलिराज का चित्र रखकर घी का दीपक जलाते हैं तथा दिन को पकाया सारा पकवान दीप के इर्दगिर्द रख देते हैं। रात को चरखा कातना भी बन्द रखा जाता है। रात को लोग पूजन के बाद जल्दी ही सो जाते हैं ताकि देवता को किसी प्रकार का विघ्न न हो।

पड़ीद :– इस दिन लोग प्रातः चार बजे के करीब उठकर चश्मे से पानी लाते हैं। पानी उल्टे होकर भरा जाता है। उल्टे होकर पानी भरने के पीछे एक रहस्य छिपा है। कहा जाता है कि माहलियत गांव में एक मल्हा नामक राणा शासन करता था। साथ के गांव कुफा में एक ठाकुर भी शासक था। उन दोनों में शत्रुता थी। पड़ीद के दिन राणा प्रातः ही चश्मे से पानी भरने ही लगा था कि पीछे से उस ठाकुर ने राणा पर वार कर दिया। राणा बाल–बाल बचा अतः प्रथा कायम हुई कि पानी भरते समय सतर्कता बरती जाये। राणा के बचने पर लोग गले मिले अतः त्यौहार का नाम पड़ीद पड़ा। इस दिन लोग प्रातः उठकर पूजन के प्रसाद को आपस में बांटकर खाते हैं। सभी गले मिलते हैं। बड़ों के चरण स्पर्श करते हैं।श्लोग एक दूसरे के घर मिलने जाते हैं। घर के दरवाजे पर पहुंचकर 'शुभ' बोला जाता है और घर के अंदर के सदस्य उनका 'शगण' कहकर अभिवादन करते हैं।

जुकारु :– अब जुकारु आरम्भ होता है। जुकारु का अर्थ बड़ों के आदर से है। यह आदरसूचक शब्द है। लोग एक दूसरे के घर मिलने जाते हैं। इस त्यौहार का दूसरा सन्दर्भ यह है कि सर्दी और बर्फ से अब तक लोग अपने घरों में बन्द थे। अब मौसम खुल जाता है अतः लोग एक दूसरे के गले मिलते हैं। गले मिलने के बाद लोग एक दूसरे से पूछते हैं–तगड़ा थियां और फिर जुदाई के शब्द होते हैं– ''मठे–मठे बीरो या मठे–मठे बिश''। लोग सबसे पहले अपने बड़े भाई ''भियाड़'' के पास जाते हैं फिर अन्य सम्बन्धियों से भेंट करते हैं। यह मिलन कार्यक्रम कई दिन तक चलता है।

पुन्हैई :– किलाड़ में पड़ीद के तीसरे दिन यह त्यौहार मनाया जाता है। परिवार का एक–एक सदस्य प्रातः ही गांव के खेल में बनी धज्जी का पूजन करने जाता है। वे जलती मशालें ले जाते हैं और वहां डालते हैं। साथ ही हलवा और लुच्ची भी लाते हैं। भंगड़ी के बकरे भी लाये जाते हैं। सत्तू के रोट भी प्रसाद रुप में रखे जाते हैं। अब खेत के आंशिक भाग को साफ कर बीत बोये जाते हैं। इस दिन बीज बोना शुभ माना जाता हैं। ताकि जब भी खेत खाली हों, खेत में फसल लगाई जा सके। तत्पश्चात् प्रसाद आपस में बांटकर खाया जाता है। खेत बर्फ से ढके होते हैं अतः फसल लगाना अभी सम्भव नहीं होता परन्तु शास्त्र विधि से पुन्हैई से बीज बोकर फसल बीजने का आरम्भ माना जाता है।

मांगल :– साच परगना के लोग प्रातः ही उठकर जुकारु के दूसरे दिन मांगल त्यौहार मनाते हैं। इस दिन सब लोग नहा–धोकर खेत में धच्ची की पूजा के लिए प्रसाद आदि ले जाते हैं। घर का मालिक अपने घर में पूजा इत्यादि करता है। सूर्य निकलने पर वह भी मशाल लेकर धच्ची के पूजन के लिए पहुंचता है। सभी लोग अपनी–अपनी मशालें वहां जलने के लिए डाल देते हैं। आटे के बकरे, सत्तू के टोट और हलवे तथा लुच्ची से धरती का पूजन के साथ ही आटे के बनावटी बैलों से हल चलाने का अभिनय करके खेत में बीज बोया जाता है। जब मांगल के समय सभी मर्द धरती पूजन के लिए खेत में चले जाते हैं तो घर की मालकिन घर में ही रहती है। वह अन्दर से दरवाज़ा बन्द करके बैठी रहती है। जब घर का मालिक वापस घर आता है तो घर का दरवाज़ा खटखटाता है। अन्दर से आवाज़ आती है– कौन ?

मालिक – मांगलु। मालकिन – क्या लाये हो ?

इस पर उत्तर देता है–'अन्न–धन्न'। मालकिन दरवाजा खोल देती है। अब थोड़ी देर बाद सभी लोग निधार्रित स्थान पर मिलते हैं तथा गाना–बजाना और नृत्य किया जाता है। इसके बाद व्यक्ति विशेष के घर सहभोग का आयोजन किया जाता है।

चियालु :– जुकारु के तीसरे दिन को चियालु के नाम से जाना जाता है। इस दिन भी जुकारु की रस्म अदा की जाती है। सबसे मिलन और सम्मान पूर्ववत् होता है। इस दिन फिंडपार और मिंधल के लोग धरती माता का पूजन कर बीजारोपण करते हैं। शेष समय साच के लोगों की भांति आपस में खान–पान और नाच–गाने में व्यतीत करते हैं। साच के लोग मांगल के दिन की तरह फिर कोठे पर बैठ जाते हैं। वहां वे भंगड़ी के बने बकरु को निशाना बनाते हैं। जिसका निशाना लग गया वह प्रजा में अपने को

सम्मानित समझता है। उसे सबके लिए खान–पान का प्रबन्ध करना पड़ता है। दूसरे दिन उसे भी भंगड़ी का बकरा लाना पड़ता है। इस प्रकार बारी–बारी से निशाना लगाने का क्रम चलता रहता है।

चवाल्यु :– जुकारु का चौथा दिन मेले का रुप धारण कर लेता है। दूर–दूर से रिश्तेदार आते हैं और मेले में शामिल होते हैं। कुठल के लोग भण्डार के पास एकत्रित होकर इस जुकारु को मनाते हैं। सम्बन्धी शराब भी साथ लाते हैं और घर के मालिक को उपहार स्वरुप देते हैं। यह विशेष कर कुठल गांव का त्यौहार है। इसी प्रकार छयाल्यु चसक और साच में, सताल्यु चसक में, अठाल्यु शौर गांव में, नवाल्यु हिल्लोर गांव में, दशाल्यु पुनः मिंधल और हिल्लोर में, ग्यारहाल्यु किलाड़ और कुमार में, बारहाल्यु पुर्थी में धूमधाम से मनाया जाता है। स्थान–स्थान पर खान–पान, गाना–बजाना और घुरेई गायन एवं नृत्य होता है। चेले 'हिंगरते' (कांपते) हैं और देवता का संदेश देते हैं। इस प्रकार सारी घाटी आनन्दविभोर हो जुकारु मनाती है। मेहमान घर–घर उपहार ले जाकर मेजवान को प्रसन्न करने में व्यस्क दिखाई देते हैं जबकि मेजबान मेहमान को प्रसन्न करने में कुछ कसर नहीं छोड़ता। चेले, पुजारी, पुरोहित सभी खाने–पीने, मिलने–जुलने और नाच–गाने में मदमस्त दिखाई देते हैं। यह क्रम कई दिनों तक निरन्तर चलता रहता है। उधर ग्यारहाल्यु को तीन दिन के लिए किलाड़ में स्वांग अयाड़े शुरु होते हैं। इन स्वांगों को देखने के लिए घाटी के लोग दूर–दूर से एकत्र होते हैं। यह स्वांग खेल मानो एक लोकनाट्य का रुप धारण कर लेता है। स्वांगी मुखौटे धारण कर नृत्य करते हैं तथा अन्य व्यंग्यात्मक खेलों का अभिनय भी करते हैं।

लिशु (बिशु) :– बैशाखी के त्यौहार को पंगवाल–जन 'लिशु' पुकारते हैं। लिशु से दो–तीन दिन पहले लोग अपने–अपने घरों की सफाई करते हैं। मन्दिर में पूजा अर्चना की जाती है। कई मन्दिर इसी दिन पहली बार गर्मियों के आरम्भ में खुलते हैं। इस त्यौहार को सभी पंगवाल शौक से मनाते हैं। मन्दिर में बलि भी दी जाती है।

थाणैई :– लिशु के दो मास बाद मनाया जाता है। मन्दिरों में पूजा–अर्चना की जाती है। तत्पश्चात् लोग नागणी के पानी के स्त्रोत पर सत्तू और मक्खन ले जाते हैं। घी में सत्तू के गोले बनाकर प्रसादरुप में बांटे जाते हैं। गोलों के साथ सौ–सौ ग्राम घी भी दिया जाता है। लोग इस प्रसाद को श्रद्धा और प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं।

मघ :– उज्जौणी के एक मास बाद यह त्यौहार पुर्थी और रेई में मनाया जाता है। इस त्यौहार के एक दिन पूर्व लिपाई और पुताई की जाती है। पकवान बनाकर मन्दिर में पूजन किया जाता है। इसके बाद प्रसाद को बांटकर इकट्ठे होकर खाया जाता है।

नवरात्रे :– पंगवाल जनजातीय लोग धर्मपरायण हैं। नवरात्रे में वे अपने घरों में हवन करते हैं। मन्दिरों में इन दिनों बहुत संख्या में बलियां दी जाती हैं और लोगों का तांता लगा रहता है।

कृष्ण जन्माष्टमी :– अन्य त्यौहारों की भान्ति पंगवाल कृष्ण जनमाष्टमी को अन्य लोगों की तरह धूमधाम से मनाते हैं। दिन को व्रत रखते हैं और रात को कृष्ण सम्बन्धी भजन–कीर्तन करते हैं।

पांगी क्षेत्र का लोक संगीत

लोक संगीत लोक तथा संगीत इन दो शब्दों के संयोग से बना है। लोक का अर्थ है, जन साधारण और संगीत गायन, वादन, नृत्य का मिश्रित रुप है अर्थात जो संगीत जन–साधारण द्वारा गाया जाए वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत जन–जीवन की उल्लासमय अभिव्यक्ति है। लोक संगीत लोक रंजन एवं जन साधारण की आंतरिक भावनाओं का प्रतीक है। सरल भाषा, सरल काव्य एवं सरल धुनों से आबद्ध इस संगीत में किसी व्याकरण अथवा शास्त्र के नियंत्रण की आवाश्यकता नहीं होती वरन यह प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रुप से स्वयं प्रस्फुटित होती है।

इस प्रकार लोक संगीत किसी व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु सामान्य जन मानस की अज्ञात सृष्टि है जिसकी रचना में अनजाने ही मानव की कल्पना, रागात्मक प्रवृति, भावना तथा जीवन की प्रत्येक गतिविधि में निहित आकर्षण स्वयं सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार मानव हृदय के अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में कभी उसकी आत्मा का आनंद आंतरिक चेष्टाओं के माध्यम से व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है। कभी स्वर एवं लय से सुसज्जित वाणी के माध्यम से व्यक्त होकर गीत बन जाता है। और कभी

उन्माद एवं उत्साह के कारण किए गए मधुर आघातों के रुप में अभिव्यक्त होकर वाद्य संगीत निर्मित हो जाता है। इस प्रकार किसी भी प्रकार की कृत्रिमता से दूर लोक संगीत में संगीत के सात्विक भाव का निदर्शन सहज ही हो जाता है।

लोक संगीत एक मौखिक परम्परा है जिसमें शिक्षा का विशेष महत्व है। लोक संगीत की तीन विधाएं होती हैं – लोक गीत, लोक नृत्य तथा लोक वाद्य। लोक संगीत की तीनों विधाओं में चाहे वह लोकवाद्य है, चाहे लोक नृत्य और चाहे लोकगीत है इनमें व्याकरण तो होता है परन्तु कलाकार उस व्याकरण से अनभिज्ञ होता है।

पांगी क्षेत्र के लोक गीत

लोकगीतों की शाश्वत परम्परा और धुनें श्रुति सिद्धान्त पर ही कायम रहती हैं। पांगी घाटी के लोकगीत भी श्रुति सिद्धांत पर ही निरन्तर गतिशील रहे हैं। वास्तव में यहां के लोकगीतों में यहां के वासियों की वह सहज, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक अभिव्यक्ति रही है जिसमें घाटी का समस्त जीवन, सामूहिक सुख–दुख, जय–पराजय, आशा–निराशा आदि मुखरित हैं। पंगवाल जनजातीय लोक गीतों के अथाह भंडार को निम्नलिखित रुप से विभाजित किया जा सकता हैः–

1. प्रेम प्रधान लोकगीत
2. सौन्दर्य प्रधान लोकगीत
3. क्षेत्र सम्बन्धित लोकगीत
4. सांस्कारिक लोकगीत
5. देशभक्ति लोकगीत
6. धार्मिक लोकगीत
7. विशेष गायन शैली सुगली–सोपरी
8. विशेष गायन शैली घुरैई

1. प्रेम प्रधान गीतः– प्रेम प्रधान गीतों में विभिन्न प्रेम प्रसंगों तथा विरह वेदना से सम्बन्धित गीतों को शामिल किया जा सकता है। प्रेम प्रसंग से संबंधित एक गीत का उदाहरण नीचे दिया गया हैः–

प्यारी भोटड़िये,जोता पुर बंगलु पुआणा हो रघु गाडा हो, बंगले जो सीसे लुआणे हो
प्यारी भोटड़िये,जोतां जाई बंगले च रहणा हो रघु गाडा हो,तिते जाई बगीचडु लाणा हो

प्रेम प्रसंग से ओत–प्रोत यह एक युगल लोकगीत है। रघु गाड और प्रेमिका पंगवालन भोटली के मध्य एक संवाद चल रहा है कि हम मिल कर जोत पर एक बंगला बनाएंगे उसमें अपने पसंद की हर चीज़ रखेंगे और प्रेम–प्यार से विलासमय जीवन व्यतीत करेंगे।

2. सौन्दर्य प्रधान लोकगीतः– इस प्रकार के लोकगीतों में पांगी की महिलाओं के रुप सौंदर्य, वेशभूषा सादगी आदि का वर्णन होता है। इससे सम्बन्धित एक लोकगीत को कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैः–

धन–धन पांगी री कुड़िए कबना जातरे जाणा
सिरे जोजी लाइए कबना जातरे जाणा
नके मुर्गी लाईए कबना जातरे जाणा
गड़े कंठड़ी लाईए कबना जातरे जाणा
हथे कंगडू लाईए कबना जातरे जाणा

इस गीत में पांगी को लड़कियों के सौन्दर्य और वेशभूषा का वर्णन किया गया है। कबन एक जगह का नाम जहां पर मेला लगता है। उस मेले में जाने के लिए होने वाली तैयारियों की बात की गई है। सिर पर जोजी, नाक में मुर्गी (नाक के लिए बनाया गया एक विशेष प्रकार का आभूषण), गले में कंठड़ी (माला), हाथ में कांगडू (चांदी से बने विशेष प्रकार के कंगन) आदि पहन कर उस मेले में जाने की तैयारी पंगवालन लड़कियां करती हैं और अपने सौन्दर्य से वह मेले में चार चांद लगाती है।

3. क्षेत्र सम्बन्धित लोकगीत :– इस प्रकार के लोकगीतों में पांगी और उसके अलग–अलग क्षेत्रों, नदियों, मंदिरों, पहाडों आदि का वर्णन किया जाता है। इससे संबंधित एक लोकगीत की कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैः–

धारो–धार चलणा ओ कि मन मेरा राजी रखणा हो
इक मन मेरा बोलदा ओ कि पांगी जोत टपणा हो
कि दुआ मन मेरा बोलदा ओ कि पांगी किलाड़ पुजणा हो

पांगी किलाड़ पुजणा कि सोहणी पंगवाड़ी दिखणी हो
सोहणी पंगवाड़ी दिखणी हो कि मन अंसा राजी रखणा हो

इस गीत में पांगी से दूर गए किसी व्यक्ति की मनोदशा का वर्णन किया है जिसे पांगी जाने की जल्दी लगी है। धारों–पहाड़ों को पार कर पांगी जाने का मन कर रहा है। पांगी जोत पार कर किलाड़ पहुंचने का मन कर रहा है। किलाड़ पहुंचकर पांगी की खूबसूरती एवं पंगवालनों की सादगी को देखने का मन कर रहा है। इस तरह वह व्यक्ति अपने चंचल मन के साथ–साथ उड़ कर पांगी की नैसर्गिक खूबसूरती का रसासुवादन कर रहा है।

4. सांस्कारिक लोकगीतः– सांस्कारिक लोकगीतों में उन लोकगीतों को शामिल किया जाता है जो विभिन्न संस्कारों जैसे जन्म, मृत्यु, विवाह, मुंडन आदि में गाए जाते हैं। विवाह के समय गाया जाने वाला विशेष गीत की कुछ पंक्तियां आगे प्रस्तुत की जा रही हैः–

गंगा पारी दा हो व्याह लगंदे
शिव स्वामी रा हो व्याह लगंदे
लाड़े लाड़ी दा हो व्याह लगंदे
चंन्द्र सूरजे दा हो व्याह लगंदे
लाड़ा देखणेरा हो सोने केरा शीशा
लाड़ी देखणेरी हो सोने केरी सुई
गंगा पारी दा हो व्याह लगंदे।

जब पंगवाल वर–वधु वेदी के फेरे लेते हैं उस समय औरतें आपस में मिलकर यह गाना गाती हैं। गंगा पारी का विवाह लगा है। चांद और सूरज का विवाह हो रहा है। लाड़ा–लाड़ी का विवाह हो रहा है। ब्राह्मण ने गाय के गोबर का चौका लगाया है। वेदी में धर्म–कर्म कमाए हैं। वर देखने में सोना है और वधु सोने की सुई हैं। इस तरह विभिन्न संस्कारों के अलग–अलग गीत होते हैं।

5. देशभक्ति लोकगीत :– इस प्रकार के लोक गीतों में देश भक्ति एवं देश भक्तों का वर्णन होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कुर्बानियों से संबंधित प्रेरणा दायक लोकगीत की कुछ पंक्तियां आगे दी जा रही हैः–

देश के आंखों के तारा हो गांधी, देश के आंखों के तारा हो
देश आजाद कराया हो गांधी, देश आजाद कराया हो
लाखों डांडे सर पर खा, लाखों डांडे सर पर हो।

इस लोकगीत में महात्मां गांधी द्वारा देश को आजाद कराने के लिए उठाए गए सार्थक कदमों एवं कुर्बानियों का वर्णन किया है। उन्हें देश के आंखों का तारा बताया गया है। देश को उनके द्वारा आजाद कराने की बात की गई है। आजादी के लिए जेल एवं अंग्रेजों के डंडो की मार गांधी द्वारा सहने की बात भी इस लोकगीत में कही गई।

6. धार्मिक लोकगीत :– धार्मिक लोकगीतों में विभिन्न देवी–देवताओं, रामायण काल एवं महाभारत काल की धार्मिक गाथाओं आदि का वर्णन किया जाता हैः–

जब थियूं पाण्डरु राजा हो
तब थियूं सेर अनारे दी दाणा हो
जब थियूं पाण्डरु राज हो
तब पियूं चडीयां दुध हो।
जब थियूं पाण्डरु राज हो
तब थियूं गीदड़ा शीन्घ हो।

इस लोकगीत में महांभारत काल में पाण्डवों के राज्य की बात कही गई है। इसमें कहा गया है कि जब पाण्डवों का राज्य था तब गेहूं के एक दाने का वजन एक सेर होता था, चिड़िया दूध देती थी, गीदड़ को भी सींग होता था, आदमी का कद नौ गज ऊंचा होता था और औरत सात गज लम्बी होती थी।

7. विशेष गायन शैली सुगली–सोपरी :– संस्कृति की एक विशिष्ट पहचान प्रस्तुत करती है। यह गायन शैली पारंपरिक हैं जो पांगी के अस्तित्व के साथ–साथ प्रकाश में आई हैं और समय परिवर्तन के साथ भी अपने मूल एवं वास्तविक रुप में कुछ विशेष लोगों के पास सुरक्षित हैं। यह गायन शैली पांगी की पहचान हैं। पांगी क्षेत्र की इस विशेष गायन शैली की अपनी एक अलग पहचान है। यह गायन शैली पूर्णतया संवादात्मक होती है। बोल प्रधान इस शैली का कुछ भाग अनिबद्ध और कुछ भाग निबद्ध यानी ताल के साथ गाया जाता है। इस गायन में अनिबद्ध रुप बोल बोले जाते है। जिसे स्थानीय लोग 'चबोल' कहते है। इनमें कुछ बोल सामान्य है जो कि हर जगह सुने जाते है लेकिन ज्यादातर बोल अलग – अलग होते है। कभी – कभी दो औरतों या दो समुहों में प्रतियोगिता भी होती है। ऐसी प्रतियोगिताओं में बोल उसी समय बनाए जाते हैं और ऐसी प्रतियोगिताओं में अक्सर एक दूसरे के प्रति सोच अच्छाईयों – बुराईयों आदि को सुगली – सोपरी के माध्यम से व्यक्त किया जाता है जिससे हंसी मजाक तो कभी लड़ाई झगड़े का माहौल बन जाता है। सवाल – जवाव के संवाद अगर एक बार शुरु हो जाए तो काफी लम्बे समय तक चलते रहते हैं। इस शेष गायन शैली की एक बड़ी विशेषता यह है कि जैसे सास बहू, रिश्तेदार, गांव के लोग जो बात सामान्य बातचीत के माध्यम से नही बता पाते है वो सुगली – सोपरी के माध्यम से कह देते है। इस गायन शैली को पांगी में कहीं सुगली ही कहा जाता है, तो कहीं सिर्फ सोपरी ही कहा जाता है। इस गायन शैली में एक पंक्ति का कुछ भाग अनिबद्ध और कुछ भाग निबद्ध रुप से गाया जाता है। निबद्ध रुप में गाया जाने वाले हिस्से में तान के लिए ढोल का इस्तेमाल किया जाता है और इसके साथ – साथ कभी – कभी बांसुरी का भी इस्तेमाल किया जाता है। इस गायन विधा में गाए जाने वाले गीत के बोल एवं स्वर लिपि प्रस्तुत की जा रही है :

बोल :

धार – धार बोल घुगी दैंती घेरा कस दिती घुगीये घेरा हो रामा – नामा हैंटा पुहाले डेरा हो दिला बोलंदे।

धार – धार ता खनोरु बोल गुगल ता धुपा आसी पांगेये के गैभूरो रामा – नामा नागे दितोरा रुपा हो दिला बोलंदे।

धरवास अगर ता बोल पांज सैर मणी जास मतै मणी तासै धरोसे धणी हो दिला बोलंदे।

पूल ता आची बोला तैची पतैची मोंऊ प्यारी लोजाणी जो बोलणा रामा नामा माऊ जो लगैहणी दैछी हो दिला बोलेदे।

भण वर ता पकोरी बोल थणेरी दौली तैंई रोची प्यारी हो रामा नामा दुई दंतैरी खोली हो दिला बोलंदे।

भैख ता ठपोरी बोल चोंडैरी देहरा जोर कि कता जुलमा रामा नामा नई रणोरी रेखा हो दिला बोलंदे।

स्वरलिपि :

अनिबद्ध भाग : सा सा सा सा सा सा सा सा सा सा सा ध़ प़ ध़ प़ ध़ प़ ध़ प़ ध़ प – सा
धा र धा र बो ल घु गी दैं ती घे रा ऽ क स दि ती घु गी ए घे रा ओ

निबद्ध भाग :– रे सा ध़ प़ साग गप प गप ग रेसा ध़प़ प़ग़ ग़ प़ सा –
रा मा ना मा हेटा ऽपु हा ऽले डे राऽ होऽ दिला बो लं दे ऽ

शेष सुगली गीत इसी प्रकार गाया जाएगा।

8. विशेष गायन शैली – घुरैई :– घुरैई पंगवाल जनजातीय लागों की पहचान है। यह यहां कब से प्रचलन में आई यह कहना काफी कठिन है। कुछ बुजुर्गों से पूछने पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शायद यह यहां तब से प्रचलन में है जब यहां पर मानव सभ्यता का विकास हो रहा था। पहले यह क्षेत्र काफी दुर्गम था और यहां बर्फ भी काफी पड़ती थी। सर्दियों में यह क्षेत्र जब चारों तरफ से बर्फ से घिर जाता था तो कोई अन्य काम और मनोरंजन के साधन न होने की बजह से शायद लोग नाचने – गाने और खाने – पीने पर विशेष ध्यान देते थे। और उसी समय शायद गायन एवं नृत्य की अलग – अलग विधाओं के साथ – साथ घुरैई का विकास भी हुआ होगा।

इस लोकगायन में पुरुष और स्त्रियां समूह में गायन प्रस्तुत करते हैं और इस गायन के साथ एक विशेष प्रकार का नृत्य किया जाता है जिसे घुरैई नृत्य ही कहा जाता है। इस लोकगायन शैली के गीत श्रृंगारिक, प्रेम – प्रसंग, धार्मिक एवं एतिहासिक

लोकगाथाओं पर आधारित होते हैं। स्त्रियां व पुरुष बारी – बारी से एक – एक बोल बोलते हैं और साथ – साथ नृत्य भी करते है। इसके साथ किए जाने वाले नृत्य में पुरुष और स्त्रियां अलग – अलग या फिर मिलकर दो कतारें बनाते है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर विशेष प्रकार से कदम मिलाकर नृत्य करते हैं। बीच–बीच में विशेष प्रकार के बोल जैसे 'बल्ले नाटी बल्ले हो, शाबा नाटी शाबा हो' का प्रयोग किया जाता है। घुरैई गायन नृत्य के साथ ही किया जाता है परन्तु कभी – कभी घरों में एक जगह इकट्ठी होकर औरतें घुरैई गायन करती है। घुरैई गायन के साथ बांसुरी का बहुत ही अच्छा प्रयोग किया जाता है। बांसुरी वादक अपनी बांसुरी की धुन से इस गायन शैली में चार चांद लगा देता है। साथ ताल देने के लिए बड़ी ढोल का उपयोग किया जाता है। जो कि स्थानीय लोगों द्वारा बनाई गई होती है। इस गायन विधा में गाए जाने वाले गीत के बोल एवं स्वर लिपि प्रस्तुत की जा रही है :

स्थाई : अप्पु नरैणा वो पूजाई बैठे हो – 2

अंतरा : नरैणे पूजाई वो फूलै हार घटिया हो। फूलै चूगे – चूगे हार गुडाई हो।
अप्पु धुडु स्वामी धारा कैलासा हो। बारुहैं बरहै वो घरे जेता येरा हो।
नचां धुडु वो जटा हो खेलारी हो। जटा अंदरा वो गंगा निकलीया हो।

भावार्थ :

इस गीत में भगवान शिव का वर्णन किया गया है। शिव शंकर कैलाश में रहते है। उनकी जटा से गंगा निकलती है। उनकी जटाएं बिखरी है। वो ध्यान लगाकर बैठे हुए हैं। उन्हैं धुडू स्वामी की संज्ञा दी गई है।

राग छाया :– भूपाली **ताल :– कहरवा**

स्थाई

सा ध़ प़ ध़ सा ।	रे रे ग रे	सा ध़ ग़ प़ ।	ध़ सा सा सा
अ पू ना रै ऽ ।	णा वो पू ऽ	ज ई वे ऽ ।	ठे ऽ हो ऽ
×	0	×	0

अंतरा

सा ध़ प़ ध़ सा ।	रे रे ग रे	सा ध़ ग़ प ।	ध़ सा सा सा
पू जाई वे ऽऽ ।	ठे वो फु ले	हा र घ टि ।	ये ऽ वो ऽ
×	0	×	0

शेष घुरैई गीत इसी प्रकार गाया जाएगा।

पांगी के लोक नृत्य

लोक नृत्य स्वतः सिद्ध अभिनय है, जिसके लिए न तो पूर्ण तैयारी की आवश्यकता होती है और न रिहर्सल की। इसका रंगमंच ग्रामीण भूमि, हरी–हरी चरागाहें एवं विशाल विस्तृत आकाश है। नृत्य पंगवाल लोगों के रग–रग में है। कोई मेला हो, त्यौहार हो, अन्य शुभ अवसर हो, नृत्य के बिना निर्वाह नहीं है। फसली काम से निवृत हो गए हों और दूसरा विशेष कोई काम न हो तो बेकार बैठने से क्या लाभ, दो–चार मित्र इक्ट्ठे हुए और नृत्य आरम्भ हो गया। बाहर बर्फ गिरी है, इधर उधर जाना कठिन है, खेत खलियान दूर हैं तो क्यों न इस सुअवसर से लाभ उठाया जाए और नृत्य का आयोजन किया जाए। कोई त्यौहार हो, मेला हो इसी प्रकार का कोई मंगल दिवस हो, सामुहिक नृत्य करते–करते कई बार तो घंटों ही बीत जाते हैं। यूं भी वह नृत्य ही क्या जो पांच छः घंटों से पहले समाप्त हो जाएं। कुछ ऐसे ही विचारों से ओत–प्रोत पंगवाल, नृत्य के काफी शौकीन हैं। पांगी के लोक नृत्य निम्नलिखित हैं:–

1. घुरैई नृत्य 2. वृत नृत्य 3. सेन नृत्य
4. भोट नृत्य 5. स्वांग नृत्य

1. घुरैई नृत्य :– पंगवाल लोकनृत्य गाने के साथ भी किया जाता है और वाद्ययंत्रों की धुन पर भी किया जाता है। पांगी में पुरुष और महिलाएं अलग–अलग नाचते हैं। महिलाएं प्रायः गाती भी जाती हैं और नृत्य भी करती जाती हैं। ऐसे नृत्यों को घुरेई नृत्य

से जाना जाता है। विशेष उत्सवों पर पंगवाल–महिलाएं परम्परागत वेश–भूषा में गाते, वृत में घूमते हुए नृत्य करती हैं। नाचते समय पैरों की थिरकन और गान के स्वर में तालमेल बना रहता है। नृत्य करते समय उसकी भाव भंगिमाएं भी कलापूर्ण और आकर्षक होती हैं। घुरेई–नृत्य के गान का विषय प्रेमकथा, विरहगान, दुखांत और सुखांत कोई भी कथानक हो सकता है। नृत्य की गति समान रुप से बनी रहती है। यह मेलों, त्योहारों और अन्य विशेष अवसरों पर किया जाता है।

2. वृत नृत्य :– पुरुष नृत्यों में एक वृत नृत्य है जो मेलों और त्योहारों के समय किया जाता है। वेश–भूषा का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। एक व्यक्ति बारी–बारी से गंड़ासा लेकर सबका नेतृत्व करता है। पांव आगे और पीछे चलते रहते हैं। बीच–बीच में 'हो हो' की ध्वनि उच्चारित की जाती है। ढोल की ध्वनि बराबर गूंजती है।

3. सेन नृत्य :– पुरुषों के वृत और महिलाओं के घुरैई नृत्य के अतिरिक्त एक अन्य प्रसिद्ध नृत्य सेन नृत्य है जो विशेष अवसर पर देवताओं की स्तुति के रुप में किया जाता है। नर्तक वाद्ययंत्रों की धुन में स्थानीय वेष–भूषा में देवताओं के स्तुति उपकरण लिए नाचते हैं, यह नृत्य वास्तव में देव–नृत्य है। पांव आगे से पीछे की ओर बराबर गति चलते रहते हैं। बीच–बीच में देवता की स्तुति भी होती रहती है। यह नृत्य कथा विशेष पर आधारित है।

यह धारणा है कि एक बार एक राक्षस मनुष्य रुप धर कर नर्तकों में शामिल हो गया। किसी नर्तक ने उसकी जांच कर ली कि यह मनुष्य न हो कर कोई राक्षस है अतः नृत्य पीछे की ओर शुरु किया। राक्षस की पहचान हो गई। विश्वास है कि राक्षस पीछे को नृत्य नहीं कर सकते अतरू उसे पकड़कर मार दिया गया। उस दिन से सेन नृत्य की शैली आगे से पीछे नृत्य करने की चली आ रही है। यह नृत्य आवश्यक तौर पर स्थानीय वेश–भूषा में किया जाता है तथा नृत्य स्थान प्रायः देवालय होता है।

4. भोट नृत्य :– भोट लोगों के नृत्य भी अन्य पंगवाल लोगों से मिलते–जुलते हैं। उनकी महिलाएं नृत्य कला में विशेष प्रवीण हैं। भोटलीरे नाच का वर्णन लोक गीतों में किया गया है।

5. स्वांग नृत्य :– पंगवाल जनजाति का यह भी एक विशेष लोकनृत्य है। मेले और त्यौहारों के अन्य में मुखौटे लगातार स्वांग नृत्य करने की प्रथा है जिसका अर्थ देवताओं की राक्षसों पर विजय है।

पांगी क्षेत्र के लोक वाद्य यन्त्र

संगीत कला के अंतर्गत गायन, वादन और नृत्य इन तीनों का अलग–अलग प्रयोजन और महत्व है। गायन और नृत्य वादन के बिना अधूरे हैं लेकिन वादन स्वयं में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त किए हुए है। संगीत के द्वारा मन के विशिष्ट भावनाओं को प्रकट करने के लिए विभिन्न वाद्यों का प्रयोग होता है।[1] पांगी के साथ–साथ पूरे हिमाचल को यह गौरव प्राप्त है कि शास्त्रों में जिन आदि वाद्यों का उल्लेख है, वे आज भी उसी रुचि से यहां बजाए जाते हैं। भारतीय समाज में डमरु और बांसुरी को देवतुल्य माना, क्योंकि वे शिव और कृष्ण के प्रिय वाद्य थे। सामाजिक नृत्य हो या पौराणिक अथवा धार्मिक, देव–पूजा हो या कोई पर्व, उत्सव हो या त्योहार वाद्यों का होना नितांत आवश्यक है। पांगी क्षेत्र के लोक वाद्य यन्त्र निम्नलिखित हैं:–

ढोल	रैबान	नगारा	दुबातरा (दोबात्रा)	पौल	खंजरी
डमरु	भण	करनाल	तुरी	काहल	शंख
ढौंस	छंछाल	घंटा	नरसिंग (नरसिंघा)	ढोलकी	कांसे
बांसुरी	शहनाई	नलगोजा	घड़याल	चंग	चिमटा

वादय यन्त्रों की बनावट और परिचय

ढोल :– ढोल सबका परिचित वाद्य यन्त्र है। जन–जातीय लोग आम आकार के ढोल को प्रयोग में लाते हैं। पांगी के जन–जातीय लोग बड़े आकार के ढोल का प्रयोग करते हैं। विवाह संस्कार और मेले–उत्सव में ढोल का बजाना जरुरी समझा जाता है। ढोल और शहनाई हर हर संस्कार में काम में लाए जाते हैं। विवाह–उत्सव पर प्रयोग होने से पहले ढोल का मन्त्र उच्चारण के

1 पदम चंद्र कश्यप, भारतीय संस्कृति और हिमाचल प्रदेश, पृ०189

साथ पूजन किया जाता है। इस पर शुभ–अशुभ समय के राग अलग–अलग बजाए जाते हैं। विवाह–उत्सव, मेले और यात्रा के समय इस पर शुभ राग लगाए जाते हैं परन्तु मृत्यु संस्कार के समय इस पर अशुभ राग बजाए जाते हैं। इस अशुभ राग को 'ढढ' कहा जाता है। अरथी को शमशान पर आग लगाने के समय तक 'ढढ' बजाई जाती है। शुभ अवसर पर ढोल–बांसुरी की ताल पर जन–जातीय लोग नृत्य करते हैं। स्थानीय लोग ढोल को स्वयं बजाते हैं। इसके लिए 'चिहर' चुल्ली–जंगली खुमानी के तने की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। तने को वह खोखला कर लेते हैं फिर सुन्दर ढंग से तराशते हैं। तत्पश्चात बकरे या बकरी का खाल दोनों ओर मढ़ देते हैं और ढोल तैयार हो जाता है। वे बाजार में बिकने वाले ढोल की अपेक्षा अपना बना ढोल श्रेष्ट समझते हैं।

नगारा :– नगारा ताम्बे का बना होता है। यह तबले की तरह जोड़ा होता है। इसे ठठियार बनाते हैं। इस पर चमड़ा मढ़ा जाता है। मन्दिरों में नगारे चढ़ाने की प्रथा है। अतः किसी–किसी मन्दिर में नगारे निजी प्रयोग के लिए उपलब्ध हो जाते हैं।

पौल और डमरु :– पौल डमरु की तरह का साज है। जहां डमरु छोटा होता है वहां पौल बड़े आकार का साज है। डमरु एक हाथ से बजाया जाता है। डमरु के साथ बजाने के लिये चमड़े के छोटे–छोटे दो बादक लगे होते हैं जो बजाते समय स्वयं गति में आकर साज को बजाने का कार्य करते हैं। डमरु का प्रयोग केवल मन्दिर में ही होता है। पौल को गले में लटकाकर दोनों हाथ की उंगलियों से घिसकर बजाया जाता है। उंगली के घर्षण से इससे 'घूं–घूं–घूं–घूं' की ध्वनि निकलती है जो दूर–दूर तक सुनाई देती है। पौल का प्रयोग भी मन्दिर में होने वाले मेलों या उत्सवों तक सीमित रखा जाता है। इसे निजी उत्सवों में प्रयोग में नहीं लाया जाता। यह भी तांबे या लकड़ी का बना होता है।

करनाल :– करनाल पीतल का बना लम्बे आकार का परन्तु आगे से खुला मुंह वाला मुंह से बजाया जाने वाला वाद्य यन्त्र है। इसमें फूंक देने पर 'भां–भां–भां–भां' की ध्वनि निकलती है।

काहल :– काहल लम्बे आकार का, मुंह से बजाया जाने वाला साज है। इसे मंदिरों में देवता की स्तुति में बजाया जाता है। इससे 'पां–पां' की ध्वनि निकलती है। इसका निजी उपयोग वर्जित है। यह तांबे का बना साज है। इस वाद्य को पांगी में मशनी कहते हैं।

ढौंस :– ढौंस एक छोटा–सा ढोलनुमा साज होता है। इसे बजाने के लिए एक ओर टेडर लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अशुभ घड़ी में होता है या इसे मन्दिर में बजाया जाता है। इसके दोनों ओर बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है।

ढोलकी :– ढोलकी भी किसी के लिए अपरिचित साज नहीं है। यह लघु आकार का ढोल है।

बांसुरी :– बांसुरी को स्थानीय लोग 'वियुंशली' या 'ब्यूखली' या बैइंछ के नाम से पुकारते हैं। ढोल के साथ बांसुरी बजाने का प्रचलन है। निजी तौर पर गद्दी–पाहल ;भेड़ पालकद्ध अपनी कमर में हर समय बांसुरी लटकाये रखते हैं। भेड़–बकरी चराने समय जहां मर्जी वहीं ऊंचे–ठेट ;पर्वत का ऊंचा स्थानद्ध वर बांसुरी की तार छेड़ दी जाती है जिससे सारी घाटी गूंज उठती है। बांसुरी बांस 'नंगाल' (जंगली–पहाड़ी बांस) या पीतल की बनी होती है। पेशेवर लोगों के पास प्रायः पीतल की बनी बढ़िया प्रकार की बांसुरी होती है। जहां ढोल क साथ शहनाई वादक न हो वहां बांसुरी बजाकर ढोल की संगत की जाती है।

नलगोजा :– इसका प्रयोग निजी तौर पर शौकिया किया जाता है। गुज्जर जनजाति इस वाद्य यन्त्र की विशेष शौकीन है।

रैबान कांसे और खंजरी :– ये तीनों वाद्य यन्त्र समान रुप से समाधा गायक के साज हैं। समाधा–गायकों में से एक व्यक्ति एक साथ रैबान और खंजरी बजाता है और दूसरा 'कांसे' बजाकर उसका साथ देता है। रैबान को गले में लटकाया जाता है। बैठी दशा में खंजरी को गोद में दूसरी ओर टिकाया जाता है। रैबान के तारों को दायें हाथ से बजाया जाता है। साथ ही खंजरी को बायें हाथ से थापी मार–मार कर बजाया जाता है। दूसरा साथी कांसे इस प्रकार बजाता है कि रैबानध्खंजरी और कांसे की ध्वनि में लय और ताल बना रहे। इसके साथ ही गाना भी गाया जाता है। इस प्रकार गाने और साज का ताल–मेल बना रहता है। वादक घर–घर जाकर पौराणिक और धार्मिक गानों के साथ–साथ आधुनिक फिल्मी और अन्य प्रेम प्रधान गाने भी मनोरंजन के लिए सुनाये जाते हैं। इन गायकों को 'गुराही' के नाम से जाना जाता है। रैबान लकड़ी का बना सितारनुमा साज है। बनावट में नीचे से

अंडाकार होता है। जिस पर निचले भाग से ऊपरी सिरे तक पांच तारें ;चमड़े की बारीक तारद्ध बिछी रहती हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार कसा और ढीला किया जाता है। इसे किसी बारीक तराशे लकड़ी के टुकड़े से बजाया जाता है जिसे खुरकूणी कहा जाता है। खुरकूणी किसी धागे या तार के साथ लटकी रहती है ताकी इसे किसी भी समय बजाने के लिए प्रयोग में लाया जा सके। खंजरी लकड़ी की बनी होती है जिसका सिरा चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। खंजरी और रैबान का निर्माण स्थानीय मिस्त्री या वादक स्वयं कर लेते हैं जबकि कांसे बने–बनाये बाज़ार से खरीद लिये जाते हैं। कांसे धातु से बने वाद्य यंत्र होते हैं जिन्हें आपस में टकराकर बजाया जाता है। उनके बजाने से टुन–टुन की ध्वनि निकलती है।

दुबातरा :– दुबातरा तुम्बे के साथ तारें लगाकर बनाया जाता है। इसके पेंदे में एक बड़ा तुम्बा लगा रहता है, सिरे पर एक अन्य छोटा तुम्बा लगा होता है, दोनों तुम्बों को मिलाने को मिलाने के लिए बीच में एक तराशी हुई लकड़ी लगी रहती है। उन्हैं मिलाती हुई एक तार तनी रहती है जिसे हाथ में ऊंचा थाम कर उसी हाथ की उंगली से बजाया जाता है। इससे 'डियुं–डियुं' की ध्वनि निकलती है। गायक साथ–साथ गाना भी गाता जाता है। यह प्राःय योगी (जोगी) के हाथ में 'गुग्गेहल' उत्सव पर देखा जा सकता है। वादक को 'गाडी' कहा जाता है। जादू–टोने का इलाज करने वाले योगी, चेले या सौंरी 'नल्ली' डाली के माध्यम से इलाज करते हुए इसका प्रयोग करते हैं। इसे वादक ही स्वयं बना लेते हैं। वादक स्थान–स्थान पर जादू–टोने के माध्यम से इलाज़ करते हैं। सिद्ध और नाथों का भी यह प्रिय वाद्य यन्त्र रहा है।

भण :– यह एक प्रकार की कांसे की थाली है, जिसके सिरे पर पकड़ के लिए एक कुण्डा लगा रहता है। इसे मन्दिर में देवी–देवता को प्रसन्न कराने के लिए बजाया जाता है।

तूरी :– तूरी का प्रयोग साधु–सन्तों द्वारा मन्दिरों में किया जाता है। इसे पांगी क्षेत्र में तुही कहते हैं।

शंख और घंटा :– शंख और घंटे का प्रयोग प्राःय मन्दिरों में किया जाता है परन्तु मृत्यु के समय इनको श्मशान तक बजाया जाता है। यह प्रथा अन्य स्थानों पर भी है।

छंछाल :– छंछाल बजाने की प्रथा मन्दिर में ही है ये भी कांसे की तरह के बड़े आकार के यन्त्र हैं।

शहनाई :– जनजातीय शहनाई बनावट में राष्ट्रीय शहनाई से अलग है। यह साधारण लकड़ी से बनी होती है, जो नीचे से गोलाकार और उपर से गोल नली की तरह होती है। यह पूर्णतया पिंडाकार–सी लगती है। यह प्रारूय स्थानीय सामग्री से बनी होती है। उत्सवों पर यह ढोल के साथ बजाई जाती है।

जंग या चंग :– यह एक स्थानीय माउथ औरगन है जिसे स्थानीय लोहार बनाते हैं। यह बनावट में नीचे से मोटा और ऊपर से पतला होता है। ऊपर का भाग एक पतली तार–सा होता है जिसके सिरे को गोलाकार दिया जाता है। आकार में यह छोटी–सी चिमटी की तरह का होता है। इसे मुंह में रख लिया जाता है केवल तार का कुछ भाग बाहर रखा जाता है। तार के सिरे को उंगली से हिला–हिलाकर बजाया जाता है। जिससे 'डियुं–डियुं' की ध्वनि लगातार निकलती रहती है। महिलाएं इसे डंगर और भेड़–बकरी चराते समय बैठकर बजाती रहती है। इसका प्रचलन लुप्तप्रायः सा हो गया है। दूसरे अब जीवन में अधिक व्यवस्तता आने से गाने–बजाने के साधनों की ओर कम ही ध्यान जाता है। अब एसे साज–संग्रहालय की वस्तुएं बन गई है। 'कला–कला के लिए' की धारणा अब क्षीण हो गई है।

घणथाल (घड़ा–थाली) :– अंचली के समय ढोल और घण–थाल वाद्य यन्त्र बजाये जाते हैं तथा लोक गायक दो–दो में बैठकर गाने की कड़ियां दोहराते हैं। साथ ही नर्तक एक–एक, दो–दो में बारी–बारी से नाचते जाते हैं। ढोल के साथ ही अन्य वादक घड़े या 'पारी' पर थाली रखकर एक पतली–सी लकड़ी से उसे बजाता है। इस घड़े थाली को 'घण–थाल' कहा जाता है। नीचे रखे घड़े या पारी में पानी डाला जाता है। थाली को बजाते समय हाथ से कुछ ढीला पकड़ा जाता है जिससे उससे 'छैं–छैं–छप' की आवाज़ निकलती है जो ढोल के साथ ताल–मेल रखते हुए बजाई जाती है। गायक को 'बन्दे' कहा जाता है। बन्दे संख्या में चार होते हैं वे दो–दो के ग्रुप में बैठते हैं। पहले ग्रुप के एक बन्दे के पास ढोल होता है। वह गाने की कड़ी को गाता है।

दूसरे ग्रुप के एक व्यक्ति के पास 'घण–थाल' होता है। दूसरा ग्रुप गाने के स्वर को दोहराता है। इस प्रकार लोक–गाथा सारी रात गाई जाती है।

घड़याल :– स्कूल की घंटी की तरह का यह वाद्य यन्त्र मन्दिरों में प्रयोग में लाया जाता है। इसे हथोड़ानुमा यन्त्र से बजाया जाता है। इसकी ध्वनि घंटे की तरह होती है।

चिमटा :– चिमटे का प्रयोग कहीं–कहीं अन्य वाद्य यन्त्रों के साथ किया जाता है। कीर्तन के समय इसका प्रयोग आम होता है।

निष्कर्ष

पंगवाली लोकसंस्कृति एवं लोकसंगीत में यहां के वासियों की वह सहज, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक अभिव्यक्ति रही है जिसमें यहां के समस्त जीवन, सामूहिक सुख–दुख, जय–पराजय, आशा–निराशा आदि मुखरित हैं। पंगवाली लोकसंस्कृति एवं लोकसंगीत के बारे में अन्य लोग या तो जानते नही हैं या कम जानते है। यह इलाका दुर्गम एवं कठिन होने के कारण यहां की वेशभूषा, रहन – सहन, बोली एवं लोकसंगीत आदि में बहुत ही विविधता पाई जाती है। यहां के विभिन्न लोक नृत्य, लोक गायन विधाएं, वाद्य यंत्र एवं ताल आदि अपनी एक अलग विशेषता रखते हैं।

पंगवाली लोकसंगीत में प्राचीन समय के उदात – अनुदात तथा स्वरित इन तीन स्वरों की तरह आज भी तीन या चार स्वरों से निर्मित गीतों की स्वर लिपियां सुनी जा सकती हैं। फलस्परुप उनमें किसी राग के स्परुप को निश्चित कर पाना कठिन प्रतीत होता है। फिर भी कुछ गीतों में ऐसे स्वर समूहों का प्रयोग हुआ है, जिसके द्वारा उनमें आंशिक रुप से रागों की छाया स्पष्ट हो जाती है। यह गायन शैलियां मुख्यतः भूपाली, मेघ, तिलक कामोद, धानी, दुर्गा तथा मदमाद सारंग आदि रागों की छाया नजर आती है। कहरवा प्रकार के ताल के साथ – साथ कहीं – कहीं दीपचंदी एवं दादरा ताल का प्रयोग भी इन गायन शैलियों के साथ होता है।

आधुनिकता एवं बदलाव के प्रभाव में भारत वर्ष की विभिन्न संस्कृतियां अपना वास्तविक एवं शुद्ध रुप खो रही है और पंगवाली संस्कृति एवं लोकसंगीत इससे अछूता नहीं है। आज जीवन की अधिक व्यस्तता तथा फिल्मी एवं पाश्चात्य संगीत के अधिक प्रचलन से हमारी लोकसंगीत एवं संस्कृति के प्रति रुचि कम होती जा रही है। इस अमूल्य निधि एवं हमारे पूर्वजों इस की विरासत को आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रखना हम सबका नैतिक कर्तव्य है।